87. भांट (CLERODENDRON INFORTUNATUM)

यह बड़े पत्तों का झाड़ीनुमा पौधा 3 से 5 फिट तक उँचा होता हैं। इसके पत्ते गोलाकार, एक बित्ता तक लम्बा, दोनों तरफ रोयेंदार और फटी हुई किनारो वाले होते हैं। इसके फुल सफेद लम्बे और सुगन्धयुक्त होते हैं। पत्ते दुर्गन्धयुक्त, स्वाद में बहुत कड़वे, कसैले होते हैं।

गुण प्रभाव :– यह कड़वी, तिक्ष्ण सुगन्धयुक्त, पौष्टिक, कामोद्यीपक, ज्वरघ्न एवं कृमिनाशक होता है। यह तीनों दोषों का शमन करता है। प्यास, जलन, रक्त विकार, मुँह की दुर्गन्ध, कृमि, ज्वर, विशेषकर मलेरिया बुखार का नाशक है। बच्चों के गुदामार्ग में इसके पत्तों के रस की पिचकारी देने से उनके कृमि रोग दूर होते हैं। यह साँप और बिच्छु के जहर में भी उपयोगी माना जाता है। इसमें विरेचक गुण भी है। कुष्ट (लेप्रोसी) की भी अच्छी दवा है।

मात्रा :– सुखे पत्तों के चूर्ण की मात्रा आधी से एक ग्राम तक । काढ़ा 10 से 15 मि0 लि0। जड़ का चूर्ण एक ग्राम तक।

88. कासनी (CICHORIUM INTYBUS)

इसके पत्ते मूली के पत्तों के समान, फुल चमकिले नीले रंग के होते हैं। इसकी दो जातियाँ होती है। एक जंगली तथा दूसरी खेती वाली। यही खाने के काम में आती है।

गुण प्रभाव :– यह पौष्टिक तथा शीतल होती है। प्यास, शीर दर्द, नेत्र रोग, गले की जलन, यकृत की वृद्धि, ज्वर, वमन और अतिसार में बहुत लाभदायक है। यह अग्नि वर्द्धक, रक्त वर्द्धक तथा शोधक होता है। इसका जड़ विशेष औषधीय गुण रखता है। मुंह से खुन निकलने की स्थिति में इसमें पत्तों या जड़ का रस 2 से 3 ग्राम देने से बहुत लाभ होता है। मेदा (पेट) की गर्मी को यह मिटाता है। यह गरम प्रकृति वालों के लिए अमृत है तथा किडनी के रोगी के लिए काफी लाभदायी है। इसका सलाद भी खाया जाता है तथा सब्जी के रूप में भी व्यवहृत होता है।

मात्रा :– बीज 2 से 3 ग्राम। जड़ का चूर्ण 1 से 2 ग्राम। पत्तीयों का रस 3 से 5 ग्राम प्रतिदिन।

89. ताल मखाना (ASTERACANTHA LONGIFOLIA)

यह क्षुप जाति की वनस्पति है। इसके पत्ते लम्बे, फुल नीले, डालियाँ कांटेदार, फल गोल और कंटिला होता है। इसके बीजों को ताल मखाना कहते हैं।

गुण प्रभाव :– यह कड़वे, स्वादिष्ट, स्निग्ध, पौष्टिक, कामोद्यीपक, निद्रा लाने वाला, अतिसार, प्यास, पथरी, मुत्र संबंधी रोग, प्रदाह, नेत्र विकार, शूल, जलोदर, उदर रोग, कब्जियत एवं मुत्रावरोध में लाभदायक है। इसके बीज शीतल, स्वादिष्ट, कसैला, वीर्यवर्द्धक, पचने में भारी, बलकारक, गर्भस्थापक, रूधिर विकार, दाह, पित्त विकार को हरने वाला होता है। यह कब्ज करता है तथा कफ वात के रोगों को बढ़ाता है। इसकी जड़ दर्द निवारक तथा मुत्रल होता है। यकृत की वृद्धि में इसके पंचांग का राख एवं काढ़ा लाभकारी होता है। इसके पत्ते कटिवात एवं जोड़ों के दर्द में लाभ करता है। जलोदर में इसके जड़ का काढ़ा बहुत लाभदायक होता है।

जलोदर में इसके जड़ का काढ़ा बनाने की विधि :– इसका 25 ग्राम जड़ लेकर कुटकर 500 ग्राम पानी में डाल कर उबाले। जब 100 ग्राम के लगभग पानी बचे तब उसे छान कर प्रत्येक दो घंटा पर 20 से 30 ग्राम काढ़ा पीलाना चाहिए। मुत्रल होने के बावजूद भी यह किसी भी प्रकार का आक्षेप या कमजोरी पैदा नहीं करता। अतः अति सुरक्षित मुत्रल औषध के रूप में इसका व्यवहार किया जाता है। इसके पौधों का राख भी जलोदर में काफी लाभदायक है। इसके जड़ का काढा प्रतिदिन पीने से बहुत पुरानी अनिद्रा की अच्छी दवा बन जाती है।

मात्रा :– बीज 2 से 3 ग्राम । जड़ का चूर्ण 1 से 2 ग्राम। काढ़ा 50 से 100 मि0ली0। राख 1 से 2 ग्राम प्रतिदिन।

आर्थिक दृष्टि से इसकी खेती काफी लाभदायक है। ताल मखाना बाजार में मंहगा बिकता है।

90. मानकन्द (ALOCASIA INDICA)

इसकी खेती भी होती है तथा स्वतः बाग बगिचों में भी पाई जाती है। जहाँ नमी अधिक होता है वहाँ पर यह बहुत विशालता से बढ़ती है। इसका प्रकांड मोटा होता है। इसकी जड़ में एक कंद होता है वही औषधि में काम आता है। पत्ते बहुत बड़े गोलाकार होते हैं। बंगाल के लोग इसकी सब्जी खाते हैं।

गुण प्रभाव :– यह सूजन को दूर करने वाला, शीतल, चरपरा, रक्त पीत्त नाशक और स्वादिष्ट होता है। कुष्ट, तील्ली के रोगों में लाभदायी होता है। इसके कंद को सुखाकर, उसका चूर्ण बनाकर चावल के आटे के साथ मिलाकर, उबाल कर, छान कर 100 से 200 ग्राम काढ़ा देने से सम्पूर्ण शरीर का सूजन मिटता है। अत्यधिक नमक खाने से होने वाले रोगों को यह दूर करता है। यह शरीर के अंदर का अत्यधिक नमक निकाल देता है। इसकी सब्जी कब्ज को मिटाती है एवं बवासीर में अत्यधिक लाभदायक होती है। इसके 3 से 6 ग्राम चूर्ण को दूध के साथ देने से पाण्डु (जौण्डिस) दूर होता है। इसके 10 ग्राम कन्द को मट्ठा में पीसकर देने से जलोदर मिटता है। मानकन्द का कन्द 10 ग्राम, नारियल का रस 50 ग्राम, दूध 200 ग्राम मिलाकर खीर बनाकर खाने से सभी प्रकार के वात रोग एवं सभी प्रकार के उदर रोग दूर होते हैं। इसकी आधी ग्राम राख को गुड़ के साथ देने से कृमि रोग दूर होता है।

मात्रा :– जड़ का चूर्ण आधी से एक ग्राम तक या उपर बताये मात्रा के अनुसार । **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती लाभदायक होती है। इसके द्वारा औषध निर्माण कर बाजार में बेचा जा सकता है।

91. बड़ा गुमा (LEONOTIS NOPETEFOLIA)

यह वर्षजीवी पौधा समस्त भारत में मिलती है। बंगला में इसे हेजुर चेई तथा दक्षिण में मातीसूल के नाम से जाना जाता है। इसका पौधा 3 से 10 फीट तक उँचा हो जाता है। इसके पत्ते आमने सामने लगते है तथा लम्बे, गोल, कटे हुए किनारों वाले होते हैं। इसके फुल नारंगी रंग के तथा झूमको में लगते हैं।

गुण प्रभाव :– यह ज्वर नाशक कटु पौष्टिक होता है। इसके पत्तों का काढ़ा अथवा रस नीम के साथ मिलाकर मलेरिया में दिया जाता है। इसमें थोड़ी शराब भी मिला दी जाती है। ज्वर उतरने के पश्चात भी इसे कुछ दीनों तक प्रयोग करने से पुनः ताकत हो जाती है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बन जाती है। यदि पेशाब थोड़ा और जलन युक्त हो तो इसके पत्तों के रस में भूई–आँवला मिलाकर देना चाहिए। इसके बीज अथवा फुलों को कुचलकर करंज के तेल में मिलाकर सुखी खुजली और छोटे बच्चों के शिर पर होने वाले घाव पर लगाने से ठीक होता है। जिन स्त्रियों के स्तन सूज गये हों तथा दूध नहीं आ रहा हो तब इसके जड़ को पीसकर उसपर लेप करने से सुजन मिट जाती है तथा दूध आने लगता है। यह मासिक धर्म को नियमित करता है। यह ज्वर नाशक तथा नीन्द लाने वाला माना जाता है। यह मृदु विरेचक एवं शोधक होता है। इसके पत्तों का व्यवहार संधीयों के सूजन पर किया जाता है। यह सर्दी, खाँसी, बुखार की अति उपयोगी औषध है।

मात्रा :– चूर्ण 1 से 2 ग्राम। काढ़ा या स्वरस 5 से 10 ग्राम। फुल का चूर्ण 1 से 2 ग्राम प्रतिदिन देना चहिए।

आर्थिक दृष्टि से इसकी खेती बहुत ही लाभदायी सिद्ध हो सकती है।

92. मेंहदी (LAWSONIA INERMIS)

इसका पौधा 3 से 10 फिट तक उँचा होता है। यह झाड़ीनूमा, हमेशा हरा रहने वाला, छोट–छोटे पत्तों वाला, फुल खूशबुदार, आम के मंजर जैसा होता है। इसके पत्तों को छाया में सुखाकर चूर्ण बनाकर प्रयुक्त किया जाता है।

गुण प्रभाव :– इसके पत्ते वमनकारक, शरीर की दाह को शान्त करने वाला, श्वेत कुष्ट में लाभदायक है। इसका फुल उत्तेजक, हृदय तथा मज्जा तन्तुओं को बल देने वाला, मलरोधक, ज्वरनाशक और उन्माद में लाभदायक होता है। मस्तक शुल, कटिवात, खाँसी, व्रण, नेत्र रोग, गीली खुजली, तिल्ली के रोग, मासिक धर्म संबंधी रोगों को दूर करता है।

रक्त को शुद्ध करने तथा बालों को बढ़ाने वाला है। बीज मज्जा तन्तुओं के लिए बलदायी होता है। गलित कुष्ठ और कष्ट–साध्य चर्म रोगों पर इसको धातु परिवर्तक औषध के रूप में देते हैं। इसके फुलों से बनी तकिया अनिद्रा को मिटाती है। इसका चूर्ण सफेद दाग के लिए उपयोगी है। यदि दस्त साफ नहीं हो तो सनाय के पत्ते, बीज निकाला मुनक्का, गुलाब का फुल समभाग लेकर चूर्ण करके, उसमें से 20 ग्राम के लगभग लेकर, रात में सोने के समय, जल से लेने से, सुखे हुये मल की गाठानें निकल जायेंगी।

मात्रा :– पत्तों का चूर्ण 1 से 2 ग्राम। फुल का चूर्ण 1 से 2 ग्राम। काढ़ा 10 से 20 मि0लि0। छाल चूर्ण आधी से एक ग्राम तक प्रतिदिन । **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती लाभदायक है। बाजार में इसकी बहुत माँग है। इसका बाजार विश्वव्यापी है। इसका व्यवहार सौन्दर्य वर्द्धन तथा केश रंजन में भी किया जाता है।

93. शालपर्णी (DESMODIUM GANGETICUM)

इसका छुप वर्षात के दिनों में अधिक देखने के लिए मिलता है। यह 1 से 5 फीट तक उँचा होता है। इसका फुल कुछ बैगनी या गुलाबी रंग लिए हुए, फलिया पतली, चपटी, बाँकी, नोकदार 3–5–7 संधियों वाला होता है। इसका पौधा समस्त भारत में पाया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव :– आयुर्वेदिक मत से शालपर्णी तिक्त रसवाली, पचने में भारी, गरम, रसायन, कामोद्दीपक, स्वादिष्ट, कृमिनाशक, मेदवर्द्धक और आँतों को संकुचित करनेवाली होती है। यह मोती ज्वर (Typhoid) और दूसरे ज्वर की वजह से हानेवाली मानसिक खराबी, वात, प्रमेह, बवासीर, सूजन, दमा, खाँसी, त्रिदोष, प्यास, वमन, अतिसार, कफ, पित्त को नष्ट करनेवाली और गर्भ के अन्दर भ्रूण की रक्षा करनेवाली होती है। आधा शीशी के दर्द में भी इसका उपयोग होता है।

यूनानी मत से इसकी जड़ प्रवाहिका को रोकनेवाली, पौष्टिक, पित्त विकार को दूर करने वाली, जीर्ण ज्वर में लाभदायक और छाती तथा फेंफड़ों की पुरानी बीमारियों में लाभदायक तथा वमन और मिचलाहट को दूर करने वाली होती है।

शालपर्णी आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध योग दशमूल का एक अंग है। इससे बना दशमूल का काढ़ा प्रसूति के समय होने वाली सब प्रकार की बाधाओं को दूर करके शरीर को सुरक्षित रखता है। शालपर्णी की जड़ और पत्तों का काढ़ा काली मिर्च के साथ रक्त के दोषों को सुधारने के लिये दिया जाता है। यह सुप्रसिद्ध औषधि है। चिरायते के साथ शालपर्णी की जड़ को औटाकर पिलाने से ज्वर छूट जाता है। नाभि, वस्ति और योनि के उपर शालपर्णी की जड़ का लेप करने से मूढ़ गर्भ बाहर निकल जाता है। श्लेष्मत्वचा के अन्दर सूजन पैदा होकर अगर ज्वर आ जाय तो उसमें इस वनस्पति का उपयोग लाभदायक होता है। इसकी दो जातियाँ होती है। दोनो एक समान लाभदायक है।

मात्रा :– इसका चूर्ण 3 से 5 ग्राम । काढ़ा 10 से 20 मि0लि0। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती लाभदायक है तथा इसकी बाजार में अच्छी माँग है।

94. सनई (CROTOLARIA JUNCEA)

वर्णन :– सन की खेती भारतवर्ष में प्रायः सब ओर होती है। इसका पौधा एक से चार फुट तक ऊँचा घास की तरह होता है। इसके पत्ते लम्बे अधिक और चौड़े कम होते हैं। इनकी लम्बाई 1 इंच से 4 इंच तक होती है। इसकी शाखाओं के सिरे पर पीले रंग के पतंग की तरह फूल आते हैं। इसकी फली 1 से लेकर 2 इंच तक लम्बी, लम्बगोल और नोकदार होती है। हर एक फली में आठ, दस बीज रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव :– आयुर्वेदिक मत से सन के पत्ते गर्म, तीक्ष्ण, खट्टे, कडुवे, कसैले, वमन लाने वाले, मृदुविरेचक, गर्भघातक, पीड़ा को दूर करनेवाले और वात तथा कफ को दूर करने वाले होते है। इसके फूल श्वेत प्रदर और रक्तरोगों में लाभदायक होते हैं। इसके बीज ठंडे, ग्राही पचने में भारी, ऋृतुस्त्राव नियामक और चर्मरोगों में लाभदायक होते हैं।

इसके जड़ को वमन लाने वाली कहा गया है। इसके पत्तों का रस तेल में मिलाकर त्वचा के रोगों पर लगाने के उपयोग में लिया जाता है। इसके फुलों को दूध में पीसकर नारू इत्यादि दुष्ट व्रणों की सूजन पर बांधते हैं। इसके बीज रूधिर को साफ करने के लिये दिये जाते हैं।

इसके पत्ते शीतल, स्निग्ध और चर्मरोगनाशक होते हैं। इसके बीज पाचक, मृदु विरेचक और आर्तवजनन होते हैं। शरीर में गर्मी बढ़ जाने से त्वचा के ऊपर जो चर्म रोग हो जाते हैं। उनमें सन के पत्तों की काढ़ा बनाकर देने से रक्त की गर्मी शांत होकर रक्त साफ हो जाता है। इसके पत्तों का लेप भी त्वचा के ऊपर किया जाता है। खतमी के पत्तों के बदले इनके पत्तों को देने से काम चल जाता है। शरीर में बढ़ी हुई चर्बी को कम करने और जीवन विनिमय क्रिया को सुधारने के लिये इसके बीजों का चूर्ण भोजन में मिलाकर दिया जाता है।

स्थूल शरीर वाली स्त्रियों के अनार्त्तव रोग में भी इसके बीजों का चूर्ण उपयोगी होता है। सन के बीजों का पीसकर भुरभुराने से कांच निकलना बन्द हो जाता है। सन के फूलों का सेवन करने से श्वेतप्रदर और रक्तविकार मिटता है। जमे हुये रूधिर पर इसके पत्तों का लेप करने से रूधिर का जमाव विखर जाता है।

मात्रा :— इसके बीजों की मात्रा तीन ग्राम से छः ग्राम तक है। पत्ते 1 से 3 ग्राम तक। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती अधिक लाभदायक है। इसके बीज की माँग दवा निर्माण एवं इसके सन (पाट) की माँग रस्सी, कागज एंव कपड़ा उद्योग में अधिक है। इसके पत्तों से बने कम्पोस्ट खाद जमीन को अत्यधिक उपजाऊ बनाता है।

95. झाऊ (TAMARIX ARTICULATA)

यह नदियों के रेत में उगने वाली पौधा, दिव्य औषधीय गुण सम्पन्न है। इसकी पतली—पतली डालियां होती है। उस पर छोटे—छोटे पत्ते होते हैं। यह झाड़ीनुमा होती है। इसका डंठल लचीला होता है। इसके तना से टोकरी बनाया जाता है। जो काफी मजबूत होता है। बिहार, झारखण्ड के लगभग सभी लोग इसको झौआ के नाम से जानते हैं, इसकी कई जातियाँ होती है। इसकी एक जाति की फली को आयुर्वेद के वैद्य माई के नाम से व्यवहार करते हैं। इरान एवं अफगान में यह बहुत अधिक पैदा होता है।

गुण परिचय : इसमें ग्राही गुण होने के कारण यह अतिसार को दूर करता है। इसका फल संकोचक होता है। इसका घनसत्व अनुलोमिक एवं कफध्न होता हैं। रस तिक्तता लिए हुए होता है। यह माजूफल के समान काषायाम्ल रखता है। इन पौधों के काढ़ा को गाढ़ा करने के बाद उसमें मधु मिला लिया जाता है। जिसकी गुणवत्ता गझंजवीन जो विदेशों से आती है। वैसी ही गुणकारक होती है। झाऊ के काढ़े से कुल्ला करने से मसुढ़ों का सुजन मिटता है। इसके पत्तों के काढ़ा का वफारा लेने से बवासीर, व्रण एवं घावों में लाभ होता है। इसके फल को अतिसार और पेचिस में आधी से 1 ग्राम की मात्रा में देने से बहुत लाभ होता है। झाऊ को माजुफल के प्रतिनिधि के रूप में भी व्यवहार किया जाता है। इसके पत्ते के चूर्ण 3 ग्राम मिश्री के साथ प्रतिदिन लेने से बढ़ी हुई तिल्ली अपनी स्थान पर चली आती है तथा स्वास्थ्य में सुधार होने लगता है। इसके हरे जड़ को थोड़ा मोटा कुट कर उसके बराबर तिल का तैल और दुगुना पानी मिलाकर आग पर औटाना चाहिए। जब सभी पानी जल जाय। झाऊ की लकड़ी भी जलजाय अर्थात् तेल मात्र रह जाय तो छानकर शीशी में रख लेना चाहिए। इस तेल को केश में लगाने से केश काला हो जाता है। इसके पत्तों का वाष्प यदि नाक से खींचा जाय तो सर्दी में तुरंत लाभ होता है। 10 ग्राम अनार का छाल और 10 ग्राम झाऊ का छाल दोनों को दूध में पीसकर उसे स्तन पर कुछ दिन लेप करके सुखने पर पोंछ देने से स्तन की ढिलापन दूर हो जाती है। ऐसा प्रतिदिन दो बार करनी चाहिए। कुछ आदिवासी यकृत की विनिमय क्रिया को सुधारने के लिए इसके 20 ग्राम कुटे हुए लकड़ी को पानी में रात में फुला देते हैं और प्रतिदिन सुबह पीते हैं, जिससे काफी लाभ मिलता है।

इसकी मात्रा : 50 ग्राम छाल या पंचांग के काढ़ा को ही अधिक व्यवहार किया जाता है। **व्यवसायिक दृष्टि से** यह अतिउपयोगी है। इससे टोकरी बनता है। इसका घनसत्व बाजार में अच्छी कीमत पर बिक सकती है। इसका तेल बनाकर बेचकर गाँव वाले आर्थिक स्थिति सुधार सकते हैं। गझंजवीन जो विदेश से आता है उसे बनाकर अपने देश की मुद्रा को बचा सकते हैं तथा धनं अर्जन कर सकते है। इसका धन सत्व बनाकर बेचा जा सकता है।

96. ब्रह्मदंडी (TRICHOLEPSIS ANGUSTIFOLIA)

यह लता जाति की सुन्दर पौधा है। लम्बी–लम्बी डालियाँ पतली–पतली पत्तियाँ एवं उँची–नीची होकर फैलने वाली कांटेदार पौधा है। यह समस्त भारत में होने के बावजूद इसकी विधिवत खेती नहीं करने से यह दुर्लभ हो गया है तथा इसकी आवश्यकता की पूर्ति खाड़ी के देश करते हैं। इसकी अच्छी खेती झारखण्ड, बिहार सहित सभी मैदानी भागों में की जा सकती है। यह दिव्य औषधियों की श्रेणी में प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। सोना, चाँदी बनाने वाले लोग इसका व्यवहार प्राचीन भारत में करते थे। इसका तंत्र–मंत्र में भी प्रयोग होता रहा है। इसको घर के आस–पास रहना अच्छा माना जाता है।

गुण एवं प्रभाव : इसके चूर्ण या काढ़ा का इस्तेमाल सफेद दाग एवं अन्य सभी चर्म रोगों पर किया जाता है। यह स्नायु पौष्टिक है। काम वर्द्धक है एवं वीर्य की कमजोरी को मिटाता है। अन्य पौष्टिक तथा खुन सफी दवाओं के साथ इसका व्यवहार किया जाय तो और अधिक लाभदायी होता है। इसके पौधों का काढ़ा 10 से 20 ग्राम प्रतिदिन लेना चाहिए। चूर्ण एक से दो ग्राम प्रतिदिन लेना चाहिए । धन अर्जन के लिए इसकी खेती की जाय तो बाजार प्राप्त होने में कठिनाई नहीं है। अतः इसकी खेती लाभदायक है।

97. इन्द्रायण लाल (TRICHOSANTHES BRACTEATA)

यह लता जाति का पौधा है। इसकी बेल बहुत लम्बी बढ़ती है। ये बड़े–बड़े पेड़ो पर चढ़ जाती है। इसके पत्ते 3 से 6 इंच व्यास के और त्रिकोण से षटकोण तक होते हैं। इसके फल गोल नारंगी के समान और पकने पर लाल हो जाते हैं। फलों पर नारंगी रंग की 10 धारियाँ रहती है। किसी–किसी में यह धारी नहीं दिखाई पड़ती है। इसका मज्जा कालापन लिये हुए हरा होता है। उसमें बहुत से बीज होते हैं। इसकी जड़ जमीन में बहुत गहरी बैठती है। उसमें एक के नीचे एक कई गाँठें होती है।

गुण एवं प्रभाव : इसका फल श्वास, दम्मा, कान के रोग और पुरानी सर्दी में लाभदायक है। यह कण्ठरोग, प्लीहा, उदर रोग एवं मुढ़ गर्भ, कुष्ठ तथा दुष्ट व्रण का नाशक है। यह पेट के अफारे को भी मिटाती है तथा दस्तावर है। आधा शीशी, मस्तिष्क की गर्मी, आँख के रोग, मिरगी और आमवात में भी यह मुफिद है। इसके काढ़ा से कुल्ला करने से दाँत के दर्द दूर होते हैं। इसके फल एक भाग पानी 4 भाग नारियल तेल 2 भाग के अनुपात में तेल पकाकर लगाने से पुरानी सर्दी एवं अन्य दर्द पर लाभ करता है। कान में इस तेल को डालने से पीव निकलना बन्द हो जाता है। नाक के फोड़ा को भी यह तेल दूर करता है। इसके फल को चिलम में रखकर पीने से दम्मा में अधिक लाभ होता है। व्यवसायिक दृष्टि से इसकी खेती अति उपयोगी है। इसकी उपलब्धता के अभाव में अनेकों दवाइयाँ नहीं बनती। बाजार में यह मिलती नहीं है। इसके अभाव में कम प्रभावशाली पौधा का व्यवहार किया जाता हैं। इसके बीज से तेल निकाला जाता है। जो बाल काला करता है तथा **व्यवसायिक दृष्टि से** इसका बाजार भारत सहित समस्त विश्व है। यह विषज है। अतएव इसका प्रयोग सावधानी के साथ करनी चाहिए।

98. अजमोदा (APIUM GRAVEOLENS)

अजमोदा का पौधा 1 से 3 फीट तक लम्बा होता है। इसके पत्ते कई भागों में विभक्त रहते हैं। प्रत्येक भाग अनिदार कंगुरेदार और कटे हुए किनारे वाला होता है। इसके झाड़ भी अजवायन की झाड़ के जैसा होता है। इसके बीज शीत काल के प्रारम्भ में बोये जाते हैं। इनकी शाखाओं पर बड़े–बड़े छत्ते लगते हैं। जिसमें फुल–फल होते हैं।

गुण–प्रभाव : यह कटु तिक्त एवं अग्निदीपक है। यह गरम होता है। यह हृदय के लिए हितकारी है। कफ वात के रोगों को दूर करने वाली है। अत्यधिक सेवन से आंतों को संकुचित करता है। वायु नालियों के प्रदाह, वमन, कुकुरखांसी, जलोदर, गुदाशय की पीड़ा, कृमि और हिचकी आदि में उचित मात्रा में सेवन से लाभदायक होता है।

इसका भूलकर भी प्रयोग गर्भवती तथा दूध पिलाने वाली स्त्रियों को नहीं करना चाहिए। मिरगी के रोगियों को भी इसे नहीं देना चाहिए। नष्टार्तव, मुत्र संबंधी बिमारी, ज्वर, गठिया, सीने के दर्द में लाभकारी है। पथरी को यह तोड़ देता

है। इसका व्यवहार उदर वायु निकालने के लिए तथा पौष्टिक दवाओं में करना चाहिए। यह पाचक रस को पैदा करती है तथा वायु को निकालती है। इसलिए पेट के बिमारियों में इसकी प्रधानता देखी जाती है। इसके एक ग्राम चूर्ण को पान के साथ रखकर उसे चुसने से सुखी खांसी मिटती है। अजमोदा को जलाकर उसका धुंआ दाँत में लगाने से दाँत का दर्द मिटता है। तीन ग्राम अजमोद के चूर्ण को मुली के पत्तों के रस के साथ देने से पथरी गल जाती है।

मात्रा एवं सेवन विधि : इसकी मात्रा एक से तीन ग्राम है। इसका प्रयोग लगातार एक सप्ताह करने के बाद दो चार दिन के लिए या तो छोड़ देना चाहिए या मात्रा कम कर देनी चाहिए। परन्तु यदि किसी दूसरी औषधि के साथ मिलाकर इसका प्रयोग किया जाता है। तब लगातार महिनों व्यवहार किया जा सकता है। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती काफी उपयोगी है। इसकी माँग बाजार में होती है। धान के खेत में यह स्वयं भी उग आती है। इसका प्रयोग काफी मात्रा में किया जाता है। अन्नादि से इसकी खेती अधिक लाभप्रद है।

99. अरती मंजरी (ACALYPHA INDICA)

यह बहु उपयोगी पौधा बिहार, झारखण्ड में यत्र–तत्र होती तो है पर इसके दिव्य गुणों से यहाँ के लोग अधिकांशतः अपरिचित है। बंगाल के वैद्य इसका बहुत अधिक व्यवहार करते हैं। इसका पौधा 1 से 3 फीट तक उँचा होता है। इसके पत्ते बड़े–बड़े तथा उनके किनारे थोड़ी झाड़ीदार होती है। डंठल के नीचले भाग से एक मंजरी निकलती है। जो पौधा के चारों ओर फैली रहती है। देखने में खुबसूरत होती है।

गुण प्रभाव : यह वमन कारक, कफ निष्कासक, दस्तावर है। यह सर्दी, खांसी, दम्मा में काफी उपयोगी है। यह न्युमोनिया में भी काफी लाभदायक है। इसके पत्तियों को पीसकर चर्म रोग पर लगाया जाता है तथा पैखाना साफ करने के लिए पत्तियों का व्यवहार किया जाता है।

व्यवसायिक दृष्टि से इसकी खेती की जा सकती है। इसे विभिन्न दवाओं में डाला जाता है। इसकी बिक्री बाजार में है। घनसत्व बनाकर यदि बेची जाय, तो यह अधिक लाभप्रद हो जाती है।

100. पाताल गरुड़ी (CORALLOCARPUS EPIGAEUS)

यह लता जाति का पौधा है। इसको कुछ लोग दुधलत भी कहते हैं। यह अतिउपयोगी दिव्य औषधि है। इसे भारतीय सर्सापरिल्ला भी कहते हैं। जल जमनी भी इसी का नाम है।

गुण प्रभाव : यह शरीर को कोमल बनाने वाली, धातु परिवर्त्तक औषधि है। किसी भी बीमारी में इसका प्रयोग किया जा सकता है। धातु परिवर्त्तक औषधियाँ, कायाकल्प करने वाली होती हैं। उनसे सभी संस्थानों के रोग दूर होते हैं। रक्त जीवन का आधार है। यह रक्त को शुद्ध कर देती है। यदि रोग नहीं भी है तो भी इसका सेवन किया जा सकता है। यह पुरानी संग्रहणी, उपदंश, गठिया आमवात, मल के साथ आँव का निकालना, पेट में सुजन की बीमारियों में अत्यधिक लाभकारी है। सर्प विष के शमन में भी इसका विशिष्ठ प्रयोग आदिवासी लोग करते हैं।

प्रयोग एवं मात्रा : सर्प विष में इसके जड़ को लगभग 5 ग्राम की मात्रा में पानी के साथ पीस कर पिलाया जाता है। प्रत्येक आधा घंटा पर दिया जा सकता है। अन्य रोगों में इसके चूर्ण को 2 से 5 ग्राम की मात्रा में प्रतिदिन दिया जाता है। वीर्य वर्द्धन एवं पौष्टिकता के लिए इसके चूर्ण के साथ थोड़ा दूध लिया जाता है। इस अति उपयोगी पौधा की मांग समस्त विश्व में है अतः इसकी खेती का विस्तार करना चाहिए। यह अर्थकरी पौधा है।

101. शंखपुष्पी (EVOLVULUS ALSINOIDES)

इसका पौधा बहुत छोटा जमीन पर फैला हुआ होता है। इसके पत्ते छोटे और धुसर रंग के होते हैं। इसके फुल लाल, सफेद और नीले रंग के होते हैं। इसका फुल शंख की आकृति का होता है। फुलों के रंग के भेद से यह तीन प्रकार की होती है। इसके पत्ते रोंअेदार होते हैं।

गुण प्रभाव : यह बुद्धिवर्द्धक है। यह आयुवर्द्धक तथा मानसिक रोगों को हटाने वाली, रसायन, कसैली, गरम, स्मरणशक्ति–वर्द्धक, काँतिजनक, बलवर्द्धक, अग्नि–दीपक, दस्तावर, शीतल, स्वर को उत्तम करने वाली, मंगल कारक, अवस्था स्थापक, पाचक, कोढ़, कृमि, विष, पित्त, अपस्मार और सब प्रकार के उपद्रव दूर करने वाली होती है। यह विष–दोष तथा मीर्गी रोग को भी दूर करती है। यह भूत–प्रेत की बाधा तथा ग्रह–नक्षत्रों के दोष को भी मिटाती है। सभी प्रकार की शंखपुष्पी गुणकारी होती है। परम्परा से मनुष्य बुद्वि वर्द्वन तथा स्मरण शक्ति के वर्द्धन के लिए वच ब्राह्मी, शंखपुष्पी का व्यवहार सफलतापूर्वक करते आ रहा है। उपर निदेशित सभी प्रकार के बिमारियों को मिटाने के लिए तथा अन्य लाभ प्राप्त करने के लिए इसका चूर्ण या काढ़ा व्यवहृत किया जाता है। अन्य औषधियो के साथ भी इसे मिलाकर व्यवहृत किया जा सकता है। इसके काढ़ा को शहद और कुठ के साथ देने से सभी प्रकार के पागलपनी एवं अन्य मस्तिष्क संबंधी दोष दूर हो जाते है। इसमें शंखपुष्पी का चूर्ण 2 ग्राम कुठ चूर्ण आधी ग्राम मधु के साथ सुबह सायं देने से भी लाभ होता है। इसके पंचांग का चूर्ण दुध के साथ देने पर मस्तिष्क को बल मिलता है। बुद्धि में सुधार होता है और खाली पड़ा मस्तिष्क भर जाता है। यह कायाकल्प की औषधि है। यह शरीर के प्रत्येक अंग–प्रत्यंग को नव जीवन प्रदान करता है। इसके 3 ग्राम चूर्ण को मक्खन के साथ कुछ दिन लेने से सुखे हुए शरीर मेंजान फूंक देता है। इसका किसी भी प्रकार से किया गया प्रयोग लाभदायी होता है। यह चूंकी मज्जा तन्तुओं को बल प्रदान करता है। इसलिए यह ओजवर्द्धक भी है। ओज को ही बल का स्त्रोत माना गया है। इसका प्रयोग कंठमाला, अजीर्ण, वगैरह में अन्य औषध के साथ किया जाता है। इसका काढ़ा जीरा के साथ देने से निद्रानाश की अवस्था में सुधार होता है। जिस व्यक्ति को स्थायी पेचिस हो, उसे चाहिए की शंखपुष्पी का पौधा कुटकर रख दें। इसमें से 5 ग्राम प्रतिदिन लेकर दो कप पानी में उबालें, जब एक कप पानी बच जाय, तब उसे छान कर प्रतिदिन पीयें। कुछ ही दिनों में पेचिस से छुटकारा दिला देता है तथा स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक सुधार होने लगता है। पुराने ज्वर में भी इसका व्यवहार किया जा सकता है।

स्त्रियों के बच्चेदानी संबंधी बिमारी में तथा रजो निवृत्ति काल के उपद्रव में शंखपुष्पी के प्रयोग आश्चर्यजनक लाभदायक होते हैं। इसके 3 से 5 ग्राम चूर्ण को प्रतिदिन दो बार लेने से बच्चेदानी संबंधी सभी बिमारी दूर हो जाती है, विशेषकर जब रक्त प्रदर की शिकायत हो तो यह अत्यधिक लाभकारी होता है। बच्चेदानी के कैन्सर को भी यह मिटा देने में सक्षम है। इसके चूर्ण को शतावर या अन्य किसी पौष्टिक पदार्थ के साथ लेने से भी यह अधिक गुणकारी सिद्ध होता है।

मात्रा : 3 से 5 ग्राम चूर्ण प्रतिदिन व्यवहार करना चाहिए। रसायन या मस्तिष्क संबंधी रोगों में लाभ लेने के लिए इसको दुध के साथ प्रयोग करना चाहिए। इसका किसी भी प्रकार से किया गया प्रयोग फायदे मन्द है। मात्रा मे ंवृद्धि होने पर भी कोई गलत लक्षण नहीं दीख पड़ते। **व्यवसायिक दृष्टि से** इसकी खेती काफी लाभप्रद है। बाजार में मिलने वाली शंखपुष्पी मिलावटी अधिक होता है। जितनी इसकी माँग है। उतनी पूर्ति नहीं होती। इसका संग्रह भी थोड़ा कठिन है। अतः इसकी खेती ज्यादा लाभप्रद है। इसकी खेती करने से यह अधिक फसल देने वाला बन जाता है। इसका बाजार पुरा विश्व हैं यह सभी जगह होता है।

102. कलौंजी (NIGELLA INDICA)

इसे आम लोग मंगरैला के नाम से भी जानते हैं। इसकी खेती मसाला के उपयोग के लिए होता है। दवा उद्योग में भी इसका व्यवहार होता है। इसका वृक्ष सौंफ के आकार से मिलती जुलती है। शाखायें एक फीट से कुछ बड़ी होती है। इसके फुल हल्के नीले रंग के होते हैं। इसके बीज तीकोने होते हैं।

गुण प्रभाव : आयुर्वेद के अनुसार यह तीता, कटु, गरम, क्षुधावर्द्धक, कामोद्दीपक, मासिक धर्म को नियमित करने वाला और गर्भ को निकालने वाला है। पेट के अफारे को दूर करने वाला, कृमिनाशक तथा वात, गुल्म, रक्त पित्त, कफ, आँव दोष और शुल को नष्ट करता है। यह हाजमा वर्द्धक तथा उन खट्टी ढकारों को दूर करती है जो कफ और वलगम से होती है। कलौंजी को जलाकर पीसकर तेल में मिलाकर लेप करने से बाल उग जाते हैं। इसका तेल पुरुषार्थ वर्द्धन के लिए जैतुन के तेल में मिलाकर किया जाता है तथा लिंग पर लगाया जाता है।

मात्रा : इसकी एक से डेढ़ ग्राम तक की मात्रा में प्रतिदिन लिया जा सकता है। इसके तेल से कान की बहरापन भी मिटती हैं । **आर्थिक दृष्टि से** यह अति उपयोगी है। इसकी खेती समस्त भारत में किया जा सकता है। इसको मसाला में भी डाला जाता है। स्वाद वर्द्धन के लिए अन्य कई खाद्य उत्पादन में काम आता है। इसमें से तेल निकलता है जो काफी किमती होता है।

103. बाराही कन्द (TACCA ASPERA)

यह लता जाति का पौधा है। पहाड़ी आदिवासी जातियाँ इसे गेठी के नाम से पुकारते हैं। इसका प्रयोग जंगल के निवासी अपने भोजन में करते आ रहे हैं। इसका स्वाद तीता होता है फिर भी इसका व्यवहार करते रहे हैं। इसकी बेल बड़ी लम्बी होती है। नागरवेल के पत्तों के समान इसका पत्ता होता है। इसकी भी कई जातियां मिलती है। किसी–किसी में आलु जैसा फल लगता है। किसी में नहीं फलता किसी के पत्ते बड़े होते हैं किसी में छोटे। इसके जड़ में एक कंद होता है। जिस पर सुअर के जैसा बाल होता है। इस कंद को जंगली सुअर बड़ी चांव से खाते हैं इसलिए लगता है कि इसका नाम वाराही कन्द पड़ा।

गुण प्रभाव : आयुर्वेद के अनुसार यह तीक्त किंचित कटु, बलकारक, पित्तजनक, बलदायक, रसायण, कामोद्दीपक, वीर्यवर्द्धक, भूख बढ़ाने वाला, मधुर, गरम, कान्ति वर्द्धक, स्वर को शद्ध करने वाला, आयुवर्द्धक, कोढ़, प्रमेह, त्रिदोष, कफ वात, कृमि और मुत्र की रुकावट इत्यादि रोगों को दूर करता है। यह धातु वर्द्धक भी है। यह बवासीर तथा गुल्म रोगों को दूर करता है। पुराने चर्म रोगों पर इसका काढ़ा या चूर्ण देने से लाभ होता है। यह शरीर को मोटा करता है। परन्तु मेद की अधिकता नहीं होने देता। यह शरीर के सूजन को मिटा देता है। सभी प्रकार के मुत्र संबंधी दोषों को भी यह मिटाता है। पेसाब की जलन तथा सुजाक में भी इसका प्रयोग बहुत उपयोगिता के साथ किया जाता है। इसके सेवन से भूख बढ़ती है। चेहरे का रंग खिल जाता है और कुष्ठ में लाभ होता है।

अनुभव से ऐसा देखा गया है कि जब झारखण्ड के लोग इसका सेवन भोजन में करते थे तो सभी तरह के रोगों से मुक्त रहते थे तथा बलवान भी रहते थे। परन्तु आज की स्थिति में वे कमजोर हो गये हैं। कुछ आदिवासी प्रत्येक मंगलवार को इसके 2 से 5 ग्राम हरे कन्द की लुगदी केला के साथ फिल पाव के रोगी को देते हैं। जिससे लाभ मिलती है। अतः यह अति दिव्य औषधि है। अष्ट वर्ग की एक प्रतिनिधि है।

मात्रा : इसके चूर्ण की मात्रा 5 ग्राम तक प्रतिदिन है। यह मुंह में खुजली भी पैदा कर सकता है। इससे बचने के लिए इसे टुकड़ा करके उबाल कर धोकर सुखाकर रखना चाहिए। **व्यवसायिक दृष्टि से** इसकी खेती काफी लाभदायक है।

104. सत्यानासी (ARGIMONE MAXICANA)

यह सम्पूर्ण भारत में पैदा होने वाला पौधा है। इसके पौधे 2 से 4 फीट तक होते हैं। इसके सम्पूर्ण पौधे पर तीक्ष्ण और पतले कांटे होते हैं। इसके पत्ते उँटकटारे के पत्तों के समान लम्बे और कटी हुई किनारों वाले होते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। फल लम्बा गोल तथा कांटेदार होता हैं इस पौधे के किसी भी भाग को तोड़ने पर उसमें से पीले रंग का दुध निकलता है। इसलिए इसको संस्कृत में स्वर्णक्षीरी कहा गया है। इसको उत्तर प्रदेश में भरभाड़, बिहार में धमोय तथा झारखण्ड में कटैला कहा जाता है।

गुण प्रभाव : यह शीतल कड़वी, दस्तावर तथा खुजली, वात, रक्त रोग, कृमिरोग, पित्त, कफ, पेसाब में अवरोध, ज्वर, पथरी, सुजन, दाह और कुष्ठ का नाश करती है। इसके जड़ को चोक कहते हैं। वह भी इसी के समान गुणकारी हैं।

इसके दूध को एक बुन्द लेकर उसमें घी मिलाकर डालने से आंखों के भीतर की नेत्र शुल्क अर्थात एक प्रकार का आवरण जो आंखों के उपर चढ़ जाता है। वह कट जाता है और अन्धापन दूर होती है। इसके दूध को किसी शीशा के वर्तन में इकट्ठा कर उसमें इसके दूध से तीन गुणा घी डालकर खुब खरल कर रख लिया जाय। इसमें से एक बुन्द के

लगभग यदि सुरमे लगाने वाले सलाई से आँखों में लगाया जाय तो आँखों का दुखना, मोतिया बिन्द, आँखों की फुली, रतौंधी, आँखों से आंसुओं का टपकना, दृष्टि की मन्दता इत्यादि आँख के रोग ठीक होकर दृष्टि साफ हो जाती है तथा देखने की शक्ति बढ़ जाती है। चर्म रोगों पर इसके दूध को या काढ़ा को लगाते हैं। इसके जड़ का काढ़ा पीने से भी चर्म रोग पर लाभ होता है। चर्मरोग में इसके बीजों का तेल भी मालिस किया जाता है। नहीं भरने वाले घावों पर इसका दूध यदि लगाया जाय तो घाव जल्दी ही भर जाता है। सत्यानासी के पंचांग का धनसत्व 100 मि.ग्रा. प्रतिदिन दम्मे के रोग में देने से अधिक फायदा होता है। वैसे लोग जिन्हें गर्मी सुजाक, उपदंश की बिमारी रही है। बिमारी के ठीक होने पर भी किसी न किसी चर्म रोग से पीड़ित है। उन्हें इनके ताजे पौधों के भभका से खीचा गया अर्क 5 से 10 ग्रा. प्रतिदिन पिलाने से आश्चर्यजनक लाभ मिलता हैं। यह सिफलिस की अवस्था में भी चमत्कार पूर्ण लाभ करती हैं। सड़े हुए रोगी को सुधार देता है। इसके प्रयोग से रक्त साफ हो जाता हैं तथा इन्द्रीयां अपने विनिमय क्रिया को करने लगती है।

मात्रा : इसके बीज का सेवन नहीं करना चाहिए। 5 ग्राम जड़ का काढ़ा सभी रोगों में दिया जा सकता है। अर्क 5 से 10 ग्राम प्रतिदिन दिया जाता है। इसके धनसत्व 100 मि.ग्रा. से 200 मि. ग्राम तक दिया जाता है।

व्यवसायिक दृष्टि से इसकी खेती लाभदायी हैं। इसके धनसत्व एवं जड़ की मांग पैदा की जा सकती है।

105. चिरायता (SWERTIA CHIRATA)

यह छोटी जाति का छुप हिमालय की तराई सहित मध्य भारत तक मिलता है। यो तों यह समस्त भारत में होता है पर बहुतायत से यहीं मिलता है। इसका छुप 3 फीट तक बड़ा होता है। फुल आने के बाद पूरे पौधों को निकाल कर सुखा कर काम में लिया जाता है। इसमें बहुत बीज होता है। इसका पंचांग व्यवहार में आता है।

गुण प्रभाव : यह शीतल, दीपन, पाचन, कटु पौष्टिक है। यह ज्वरहर, दाहनाशक, मृदु विरेचक, और पारी पारी से आने वाले बुखार को दूर करता है। यह कृमि को भी नष्ट करता है। प्यास, कफ, पित्त, कुष्ठ, व्रण दम्मा श्वेत प्रदर, खांसी, सुजन, बवासीर और अरूची को दूर करने वाला होता है। गर्भावस्था की मिचली में यह बहुत लाभदायक होता है। इससे आमाशय की रस निःसरण क्रिया सुधरती है तथा अन्न का पाचन सही होता है। विषम ज्वर के चलते उत्पन्न लक्षणों को सुधारता है। खुश्क और तर खुजली में इसका काढ़ा हर्रे के साथ दिया जाता है।अजमोदा के साथ इसे देने पर यह पागलपन की अवस्था को दूर करता है। यह भारतीय परिवेश में अच्छा पौष्टिक माना जाता है। ज्वर की अवस्था में इसे देने पर कमजोरी भी नहीं होती तथा ज्वर मिट जाता है। यह अतिसार को भी दूर करता है। यह यूरोप के जेनसन करु का प्रतिनिधि हैं इसका प्रयोग आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी होता है। बहुत सारे बिमारीयों में इसको दिया जाता है तथा लाभ भी मिलता है। जैसे हर्रे के चूर्ण, 1 ग्रा., चिरायता का चूर्ण, 1 ग्राम दोनों को देने से पेट के सभी रोग दूर होते हैं। इसी योग में यदि पीपल एवं शोठ मिला दी जाय तो यह कफ के सभी रोगों की दवा हो जाती है। बल एवं स्फूर्ति देती है। चर्म रोग के लिए भी उत्तम औषधि बन जाती है। रक्त शोधन में इसका बहुत प्रयोग होता है। साथ ही आमाशय की शिथिलता में यह अति उपयोगी दवा बन जाती है।

मात्रा : इसके पंचांग के चूर्ण की मात्रा एक से 2 ग्राम है। काढ़ा बनाने के लिए इसका 5 से 10 ग्रा. तक पौधा लिया जाता है। **व्यवसायिक दृष्टिकोण से** इस पौधे की खेती बहुत ही उपयोगी है। लगभग सभी चिकित्सा पद्धति में इसका व्यवहार होता है। ग्रामीण लोग भी इसका व्यवहार करते हैं। इसका बाजार सम्पूर्ण भारतवर्ष है। इसकी मांग विश्वभर में है। इसका धनसत्व बनाकर भी विश्व के बाजार में बेचा जा सकता है।

106. राम तुलसी (OCIMUM GRATISSIMUM)

इसका वृक्ष सीधी डालियों वाला और साल भर तक रहने वाला है। इसकी छाल राख के रंग की होती है। इसकी उंचाई 4 से 8 फिट तक होती है। इसके पत्ते दोनों वाजुओं पर पतले होते हैं। इसके पत्तों की लम्बाई दो से चार इन्च तक होती है। तुलसी की जितनी जातियाँ है उनमें यही काफी सुगन्धित होती है। यह बंगाल, नेपाल, बिहार, झारखण्ड सभी जगह पायी जाती है।

गुण प्रभाव : यह स्वाद में तिक्त है। रूखी, शीतल तथा चरपरी है। रूचिकारक, गरम तथा वात एवं कफ रोग को नष्ट करती है। नेत्र रोगों को नष्ट करती है। यह हृदय के लिए हितकर है। पचने में हल्की, विष नाशक, मुर्च्छा, चर्म रोग, अग्नि विशर्प, प्रदाह तथा पथरी रोग में लाभदायक है। यह यकृत और तिल्ली तथा मस्तिष्क रोग में लाभकारी हैं। यह मुंह के दुर्गन्ध को दूर करती है। पेट के अफारा को मिटाती है। यह कामोद्दीपक, दांत और मसुढ़ों को मजबूत बनाने वाली होती है। यह बवासीर में भी लाभकारी है। यह आंतों के दर्द को भी दूर करती है। इसको पानी में उबाल कर इसका वफारा देने से गठिया एवं पक्षाघात के रोगियों को लाभ पहुंचता हैं। इसके 10 ग्राम या 10 से 12 पत्तों का काढ़ा वीर्य संबंधी रोगों में बहुत लाभकारी है। यह सुजाक की उत्तम औषध है। सिर दर्द एवं स्नायु शुल में इसके 5 ग्राम बीज फुलाकर शर्बत बनाकर पीने से लाभ होता है। यह छाती के रोगों को दूर करती है। तथा आक्षेप विरोधी है। इसमे इसके पंचांग का काढ़ा दिया जाता है। यह पेट के अफारा को दूर करती है। इसके बीज शान्तिदायक और मुत्र निःशारक है। इसके बीजों को कुछ समय तक भिंगाया जाय तो वह फुल जाता है। इसमें एक प्रकार चिकना और लसदार पदार्थ बन जाता है। इसका शर्बत बनाकर पीने से पेचीस और सुजाक में ठंढक पहुंचाता हैं। बंगाल में सर्दी पीनस से मुक्ति के लिए इसका व्यवहार होता है।

मात्रा : इसके बीज 3 से 5 ग्राम मिश्री के साथ या पानी में फुलाकर शर्बत बनाकर दिया जाता है। 15 से 25 ग्राम पौधा का काढ़ा निर्देशित सभी बिंमारियों में लाभदायक है। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती अति लाभदायक है। इसके पौधा से अर्क विधि के द्वारा तेल निकलता है। बीज का प्रयोग पौष्टिक पदार्थ के रूप में होता है। इसकी बाजार बनायी जा सकती है।

107. शिव लिंगी (BRYONIA ALBA)

यह लता जाति का पौधा है। यह बरसात में उगता है। इसके पत्ते सिल्लीदार होते हैं। यह चार से छः इंच तक लम्बे होते हैं। इसके नर फुल गुच्छों में और नारी फुल अलग–अलग लगते हैं। इसके फल पकने पर लाल रंग के होते हैं। इस पर सफेद रंग की धारियां होती है। हर एक फल में कड़वा रस तथा छः बीज होता है। यह समस्त भारतवर्ष में प्राप्त होता हैं ।

गुण : यह कटु, गरम, रसायन, सर्व सिद्धिदायक, दिब्य, वशीकरण और पारे को बांधनेवाली होता है। पित्त प्रकोप और पित्तज विकार के अन्दर इस वेल का स्वरस दूध और शक्कर के साथ मिलाकर देते हैं। यह बांझपन की दिब्य औषधि है। जिस स्त्री को बच्चा नहीं हो रहा है उसे माहवारी के बाद चौथे दिन से गाय के दुग्ध से 2 बीज निगलवा दिया जाय। दूसरे दिन 3 बीज निगलवा दे। तीसरे दिन 4 बीज निगलवा दिया जाय। इस तरह 4था दिन 5 बीज निगलवा दिया जाय। ऐसा प्रतिमाह किया जाय तो बांझपन मिटाता है। शिवलिंगी 10 ग्राम पीपल 10 ग्राम नागकेशर, 10 ग्राम तीनों को बारीक चूर्ण कर महिना होने के समय प्रतिदिन एक ग्राम इसमें से 4 दिन खिलाना है। इससे भी गर्भाधान होता हैं अन्य स्त्री रोगों को भी दूर करता है।

आर्थिक दृष्टि से इसको पैदा करना बहुत ही उपयोगी है। इसकी मांग सम्पूर्ण भारत में है।

108. मुलहटी (GLYCYRRHIZA GLABRA)

यह पश्चिमी उत्तरी भारत में पैदा लेने वाली वनस्पति है। इसकी जड़ लम्बी और गोल होती है। इसके पत्ते छोटे–छोटे और गोल होते है। इसमें छोटी और बारीक फली लगती है। इसका जड़ कुछ पिलापन लिए होता हैं। यह मीठा, कड़वा होता हैं। इसकी गंध अच्छी नहीं होती। इसकी दो जाति बताई गई है। एक जल में पैदा लेने वाली और दूसरा जमीन पर पैदा लेने वाली। यहां जिस क्षुप का वर्णन किया जा रहा है वह जमीन का पौधा है। यह झारखण्ड में देखी नहीं गई है परन्तु यहां पर यदि इसकी खेती की जाय तो यह उपजेगी। इस राज्य से सटे मध्यप्रदेश में मुलहटी की खेती होती है।

गुण–प्रभाव : वीर्यवर्द्धक, मधुर, रूचिकारक, पौष्टिक, भारी, शीतल, नेत्रों को हितकारी, मुत्रवर्द्धक, रक्त पित्तनाशक, वर्ण को सुन्दर करने वाली, स्वर को सुधारनेवाली, सूजन, विष, वात–रक्त, घाव, वमन, तृषा, ग्लानि, क्षय, रक्त विकार, रक्त पित्त, वात पित्त को दूर करने वाली होती है। यह खांसी, दम्मा, ब्रोंकाइटीज, उदर शुल, मस्तक शुल को शान्त करती है। यह छाती के रोगों को मिटाने वाली मानी गई है। क्षय की अवस्था में भी यह लाभकारी औषध है। चीन में यह पुनर्यौवन प्रदाता औषध मानी जाती है। यह औषध प्यास और ज्वर की हरारत में अतिलाभदायी सिद्व है। पेट के अन्दर क्षारीय पदार्थ इकट्ठा होने की स्थिति में तथा उदर शुल में यह औषधि अति उपयोगी है। यह सर्व रोग संशमनी योग का एक अंग है। यह जब वाय विड़ंग के साथ मिलता है तब यह सर्व रोगनाशक संशमनी योग बन जाता है। जो प्रत्येक रोग को दूर करता है।

मात्रा एवं प्रयोग : लगभग सभी निदेशक बिमारियों से मुक्ति के लिए इसके काढ़ा का व्यवहार किया जाता है। इसके चूर्ण का भी प्रयोग किया जाता है। जिसकी मात्रा एक से दो ग्राम प्रतिदिन है। दाह की अवस्था में इसके साथ चंदन मिलाकर प्रयोग किया जाता है। इसको मुँह में रखकर चूसने से मुँह के छाले दूर होते हैं। इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से हिचकी बन्द हो जाती है। मुलहटी और कुटकी का सेवन हृदय रोग के लिए लाभकारी है।

मुलहटी विदेश से आने वाला पौधा रहा है। परन्तु अब इसकी खेती भारतवर्ष में भी होती है। इसकी खेती लाभदायक है। तथा मुलहटी की मांग विभिन्न उद्योगों में है। यह आर्थिक स्थिति सुधारने वाला हो सकता है। यदि इसकी खेती की जाय।

109. बड़ा सेम (CANAVALIA ENSIFORMIS)

यह सेम के जैसी ही लता जाति का पौधा है। यह जंगलों में पाया जाता है। इसकी फली सामान्य सेम से बहुत बड़ी है। इसका बीज भी सामान्य सेम से बहुत बड़ा होता है। यह विषैला है। इसका व्यवहार जंगली आदिवासी लोग करते आ रहे हैं। यह क्षेत्रीय लोगों के लिए परिचित पौधा है। इसके जड़ एवं बीज का चिकित्सा में व्यवहार होता है।

गुण : यह तिक्त एवं कटु रस प्रधान औषध है। यह स्नायु के रोग, दर्द एवं आक्षेपज रोगों पर कार्य करता है। जंगली आदिवासी लोग दर्द की दवा जब बनाते हैं, तब इसका जड़ डालते हैं। अन्य दवाओं के साथ भी मिला देते हैं। इसे सेमा भी कहा जाता है। इससे बना तेल दर्द को बहुत ही आश्चर्यजनक ढंग से मिटा देता है। विशेषतः साइटीका दर्द के उन रोगियों के लिए भी लाभदायक है जिन्होंने अब यह विश्वास छोड़ दिया है कि धरती पर चलेंगे। योग इस प्रकार है : सेमा का जड़ 100 ग्राम, काला धतुरा का जड़ 100 ग्राम, कनेर का छाल 100 ग्राम, अकवन का जड़ या छाल 100 ग्राम, लाल इन्द्रायन का जड़ 100 ग्राम सबको कुट कर महीन करे। अब सबके तौल से चार गुणा अधिक अर्थात दो किलो सरसों या तील के तेल में इसको डालकर धूप में रख दे। 5 से 10 दिन तक धूप में अवश्य रखे। अब तेल तैयार है। इसी तेल में से थोड़ा–थेड़ा कमर से लेकर तलवे तक मालिस कर दे। एक से दो बार की मालिस से ही रोगी को नवजीवन प्राप्त हो जाता है। शुरु में इस तेल को काफी चुपड़ कर लगाना चाहिए। तब यह रोमकुप के माध्यम से वातवह संस्थान को प्रभावित कर मस्तिष्क तक अपनी आणविक उर्जा से पहुंचकर रोगी को रोग मुक्त कर देता है। एक सप्ताह में रोगी चलने फिरने लगता है। अन्दरूनी दर्द में भी इसका मालिस किया जाता है तो लाभ मिलती है। इसे लगाने के बाद हाथ को खुब अच्छी तरह साबुन से धो लेना चाहिए। चूंकि यह जहरीला है। इसकी एक और जाति कठसेमा है। वह भी जहरीली ही है। उसका भी इसी तरह प्रयोग किया जाता है। **आर्थिक दृष्टि से** इसका उत्पादन अर्थ साध्य हो सकता है यदि इससे दर्द का तेल बनाकर बेचने का व्यवसाय की जाय।

110. करौंदा (CARISSA CARANDAS)

यह एक बड़ी परन्तु सदा हरी भरी रहने वाली झाड़ी है। इसमें कांटे होती हैं। इसकी छाल आधी इन्च तक मोटी होती है। इसके पत्ते गोलाकार चिकने चमकीले होते हैं। इसका फुल छोटा, चमकीला और अत्यन्त सुगन्धित होता है।

बसन्त ऋतु में जब यह खिलती है तब उसके बगल से गुजरनेवाले का मन मोहित कर लेती है। इसका फल कच्ची हालत में हरा तथा पकने पर बैंगनी या काला पड़ जाता हैं कुछ लाली लिए भी होता हैं।

गुण : यह अग्निदीपक, भारी तथा पित्तकारक होता है। यह कब्ज करता है। खट्टा, गरम और रूचिकारक है। यह कफ को भी बढ़ाता है तथा प्यास को शान्त करता है। इसका पका फल पित्तशामक हो जाता है। इसका कच्चा फल खाली पेट में खाने से वायु पैदा करता है। इसका खट्टा मिठा फल पित्त को नियमित कर भूख बढ़ाता है। पेसाब की रूकावट को या बुन्द–बुन्द पेशाव आने की बीमारी को यह दूर करता है। इसके फल की चूर्ण 2 से 3 ग्राम तक देने से पेट का दर्द जल्द ही दूर हो जाता है। इसका अचार भूख बढ़ाने वाला और हाजमा सुधारने वाला होता है पर अधिक सेवन से कामेन्द्रियों को कमजोर करता है। लगातार आने वाले बुखार में इसके 25 से 30 पत्तों का काढ़ा देने से बहुत लाभ होता है। एक चम्मच इसके पत्तों के रस में शहद मिलाकर देने से खांसी में बहुत लाभ करता है। मिरगी के रोग के लिए इसके पत्ते बहुत उपयोगी हैं। इसके लिए जंगली करौंदे का पत्ता 10 ग्राम लें, उसे सील पर पीस लें, और दही के घोल में मिलाकर पिलावे। कुछ दिन ऐसा करने पर मीर्गी की बिमारी खत्म हो जाती है। जलोदर में करौदा के पत्तों का रस पहले दिन एक तोला, दूसरे दिन 2 तोला, इसी तरह प्रतिदिन बढ़ाते हुए 10 तोला, तक ले जाय और उसके बाद उसे कम करते हुए एक तोला पर लावे। इस प्रकार करने से जलोदर मिट जायेगा।

मात्रा : इसके पत्तों का चूर्ण 2 से 5 ग्राम। फल का चूर्ण 2 से 5 ग्राम। छाल का चूर्ण 3 से 5 ग्राम। फुल का चूर्ण 2 से 5 ग्राम देना चाहिए। **इसकी खेती लाभदायक है।** यह बहुत फलती है तथा औषध एवं आचार उद्यम में इसकी भारी खपत है। बाजार में यह बहुत नहीं मिलती। अभी टनों की आवश्यकता इसकी सिर्फ आचार बनानेवालों की है। इसके फुल से सुगन्ध द्रव्य भी बनाये जा सकते हैं। इसलिए इसके पौधों का विकास आर्थिक दृष्टि से काफी उपयोगी है। अपनें फुलों के सुगन्ध से अपने आस–पास के लोगों को स्नायविक रोगों से भी यह मुक्त करती है। इसके सुगन्ध से भी चिकित्सा होती है।

111. हुलहुल (CLEOME VISCOSA)

यह सर्व परिचित दिव्य पौधा है। यह एक वर्षायु है। कुछ इसके भेद बहुवर्षायु होते हैं। यह पौधा 1 फिट से 3 फुट तक होता है। यह नीचे से एक डंठल पर बढ़ता है और उपर झाड़ी नुमा हो जाता है। इसके डाल और पत्तियां रूएेदार होती है। इसके पत्तों से उग्र गंध आती हैं। इसमें पिले फुल आते हैं। इसकी फलिया आधी से तीन इन्च तक लम्बी होती है। जिसमें काली राई के समान उबड़ खाबड़ बीज निकलता है।

गुण : यह खारी, कड़वी, शीतल, अग्निवर्द्धक मुत्रल, साधारण दस्तावर, कृमि नाशक, कफ को दूर करने वाली, पित्त को बढ़ाने वाली और रूक्ष होती है। यह अर्वुद और सुजन को घटाती है। चर्म रोग, खुजली और कुष्ठ मलेरिया को ठीक करती है। अपचन के वजह से होने वाले ज्वर, रक्त रोग और पेशाब संबंधी रोगों में उपयोगी है। यह आंत के सभी रोगों को मिटा देने में सक्षम है। यह मलेरिया बवासीर और कटिवात में भी लाभ दायक है। त्वचा की सुन्नता को मिटाने के लिए उस पर इसके रस को थोड़ा तील तेल के साथ मालिस किया जाता है। जिससे त्वचा की सुन्नता मिटती है। इसके बीज कृमि नाशक है। तथा साधारण विरेचक भी है। इसमें पसीना लाने, उदर वायु को निकालने और उदर कृमि को नष्ट करने का प्रबल गुण है। अतएव यह दिव्य औषधि बन जाता है। इसके पत्ते दाहजनक होते हैं। चमड़े पर इसे लगाने पर फोड़ा हो जाता है। अतः इसका प्रयोग चर्म पर करने के लिए थोड़ा घी या तेल का प्रयोग इसके साथ करना चाहिए। कान के दर्द में इसके रस से पकाया हुआ तिल तेल लगाने से कान का दर्द मिटता है। हुलहुल के जड़ को गला या कान में बांधने से वैसे बुखार जिसमे रोगी समझता है कि उसे भूत लगी है या ऐसा कुछ लक्षण मिलता है तो इसके धारण से दूर हो जाता है। इसके 5 ग्राम बीज को पीस कर खिलाने से सभी प्रकार के विष नष्ट होते हैं। हुलहुल के पत्ती के रस में हुलहुल का बीज पीसकर सिर पर दो–तीन दिन लेप करने से आधा शीशी मीग्रेन का दर्द आश्यचर्यजनक ढंग से दूर हो जाता है। परन्तु इन बातों पर ध्यान देना चाहिए की फफोला पड़ रहा है या नहीं। फफोला पड़ने पर नारियल तेल या घी लगाना चाहिए।

मात्रा : इसके बीज की साधारण मात्रा 2 से 3 ग्राम है। **व्यवसायिक दृष्टि से** इसकी बीज की मांग भारतीय बाजार में काफी है। इसके बीज को लोग सब्जी के फोरन बनाने में इस्तेमाल करते हैं।

112. अरूई (COLOCASIA ESCULENTA)

इसका पौधा भारतवर्ष में सब जगह मिलता हैं। इसके पत्ते कमल के जैसे, मगर उनसे कुछ छोटे तथा सुन्दर होते हैं। इसमें कन्द होता है, जिसकी सब्जी बना कर कुछ लोग खाते हैं। इसे कच्चा मुंह में लेने पर किसी–किसी के मुंह को काटता है। मुंह में खुजली होती है। सम्पूर्ण भारत में यह होता हैं।

गुण प्रभाव : यह शरीर को मोटा करने वाली, दस्त को बांधने वाली, वीर्य को गाढ़ा करनेवाली तथा पेट में वायु पैदा करने वाली है। यह रक्त स्त्राव को रोकती है और एक प्रकार की चर्म दाहक औषधि है। इसकी काली पत्ती वाली अरूई के पत्ते के रस को लगाने से सूजन बिखर जाता है। काली अरूई के कंद का रस सिर पर लगाने से सिर का गंज नष्ट हो जाता है। नवीन वाल उग आते हैं। काली अरूई के रस पिलाने से बवासीर में लाभ होता है।

मात्रा : इसके कन्द के चूर्ण को 5 ग्राम प्रतिदिन खाना चाहिए। इसकी सब्जी थोड़ी मात्रा में खानी चाहिए। अन्यथा यह कब्ज करती है। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती लाभदायक है तथा बहुत से किसान अपने खेते में सब्जी के रूप में इसे उगाते है।

113. आकाशवेल (CUSCUTA REFLEXA)

यह पीले रंग की पराश्रयी लता है। जो बबुल, बेर, पीपल गुलर इत्यादि के पेड़ पर जाल की तरह छा जाती है। इस बेल के डालियों से कुछ सुढ़ जैसी रस चूसनेवाली डालिया निकलकर जिस पेड़ पर यह रहती है उसी का रस चूस कर स्वयं जीती है। यह कई भेद की होती है।

गुण प्रभाव : यह तीखी, मधुर, पित्त नाशक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, रसायन और दिब्य औषधि है। यह स्त्रियों के माहवारी को नियमित करता है। पेशाब को साफ करता है। यह धातु परिवर्तक है। यह यकृत और तिल्ली की बिमारी में लाभ पहुंचाने वाली है। यह मलेरिया में चौथिया या एक दिन बीच देकर आने वाली बुखार को ठीक करती है। यह जीर्ण ज्वर, आंतों के दर्द और कुकुरखांसी में लाभ पहुंचाती है। यह बेल खुन और आंतों की गन्दगी को साफ करती हैं। इसको आंखों की बिमारियों में दिया जाता है। यह रक्त शुद्धि के लिए सरसापरिला के समकक्ष मानी जाती है। यह कब्जियत को भी दूर करती है। उपरोक्त सभी रोगों में लाभ लेने के लिए इसका काढ़ा बनाकर पिया जाता हैं इसकी 10 से 20 ग्राम डंढल का काढ़ा 24 घंटे का खुराक है। रक्त विकार में इसके काढ़ा में थोड़ा शहद मिलाकर कर दिया जाता है। इसको पीसकर लेप करने से खुजली में फायदा होता है। इसके रस से तेल पकाकर बालों में लगाने से बाल का झरना रूक जाता है। यह चोट, मोच पर बांधने से भी लाभ करता है। इसके रस के लेप से लीख, ढिल जुए मर जाते हैं। इसको अन्य औषधियों के साथ भी मिलाकर प्रयोग किया जाता है।

मात्रा : इसके रस 2 से 3 ग्राम शहद के साथ दिया जाता है। 10 से 20 ग्राम पौधे को कुटकर 100 ग्राम पानी में उबालकर काढ़ा बनाकर पिलाने से उपर निर्देशित सभी रोगों में लाभ होता है। **आर्थिक दृष्टि से** यह तभी लाभदायक है जब इसका धनसत्व बनाकर बेचा जाय।

114. कपास (GOSSYPIUM HERBACEUM)

कपास से लगभग सारे भारत वाशी परिचित है। इससे रूई निकलता है। इस देश में इसकी खेती बड़े पैमाने पर होती है। इसके पौधे तीन से पाँच फीट तक लम्बे होते हैं। इसकी, शाखाएँ हरी होती है। लाल और पीला दो तरह के फुल लगते हैं। बीज भी एक में विखड़ा हुआ गोल और एक में एक से दूसरा जुटा हुआ होता है। इसको विनौला भी कहते हैं।

गुण प्रभाव :— इसका फुल मीठा, शीतल, पौष्टिक दुध बढ़ाने वाले होते हैं। पित्त और कफ के विमारियों को दूर करते हैं। प्यास को बुझाते हैं। तथा भ्रान्ति, चित्त की अस्थिरता एवं वेचैनी को दूर करते हैं। वेहाशी में भी यह लाभदायक है। इसके वीज दूध बढ़ाने वाले और कामोदीपक माने जाते है। यह चर्म रोग, साँप और विच्छू के विष और गर्भाशय पीड़ा में लाभदायक हे। यह गर्म को नष्ट करता है। अतः गर्भिणी को इसका सेवन नहीं करना चाहिए। इसके पत्ते तथा जड़ की काढ़ा हिस्टिरीया में लाभदायी है । नष्टार्तव में इसके जड़ का व्यवहार किया जाता है। 5 ग्राम विनौले की वीज को दूध में खीर बनाकर लेने से वीर्य के दोष तथा मस्तिष्क की कमजोरी मिटती है। 10 ग्राम जड़ का काढ़ा मुत्रत्याग के समय के दर्द जलन को मिटाता है। इसके फुल के शर्वत पागलपन मिटाता है। जड़ का काढ़ा कष्टार्तव को दूर करता है। इसके काढ़ा से दाँतों का दर्द मिटती है। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती बहुत लाभदायक है। इसकी तकिया, रजाई बनता है। कपड़ा बनता है। अतः इसकी खेती धनोपार्जन का अच्छा स्रोत बन सकता है।

115. चोवचीनी (SMILAX CHINA)

चोबचीनी का पौधा चीन देश का निवासी माना जाता है। परन्तु संथाल परगना की सुन्दर पहाड़ी में इस पौधा को देखा जाता है तथा अब भारत में भी इसकी खेती होने लगी है। इसका पौधा जमीन पर विछा हुआ होता है। डालियाँ पतली होती है। इसके पत्ते लम्बे गोल, पतले और तेजपात के पत्तों से मिलते जुलते होते है। इसकी जड़ सुर्खी मायल, गुलाबी रंग की होती है। कोई कोई सफेद और काली भी होती है। यह नेपाल और बंगाल में अधिकतर पाई जाती है।

गुण प्रभाव :— यह कटु तीक्त और मधुर रस का पौधा है। इसका प्रभाव गरम है। मलमुत्र का शोधन करने वाली, अफारा तथा वात व्याधि को दूर करने वाली है। यह अपस्मार उन्माद और अंगों की वेदना को कम करने वाली है। विशेषतः यह फिरंग रोग में लाभदायक है। यह चर्म पर अच्छी क्रियायें करती है। पक्षाघात, संधिवात, तथा वायु के दूसरे रोगों में यह बहुत लाभदायी है। यह पुरूषों के वीर्य दोष और स्त्रीयों के रज दोष को मिटाती है। कण्ठमाला और नेत्र रोग में भी यह लाभदायक है। जिस संधिशोथ में सुजाक या फिरंग रोग हो और चर्मरोग भी हो उसमें यह अति दिव्यता के साथ काम करती है। इसका चूर्ण ही व्यवहृत होता है। शीरदर्द, आधाशीशी, नजला, विस्मृति, चक्कर, दम्मा के रोगों में भी यह लाभकारी है। रक्त दोष के कारण होने वाले लगभग सभी रोगों को यह मिटाता है। जिनकी काम शक्ति नष्ट हो गई हो उन्हें भी यह पुनः नवीन पुरूषार्थ देती है। विस्फोटक रोग की असाध्य अवस्था में में भी यह लाभकारी सिद्ध हुई है। यह गठिया के रोगी को भी आरोग्यता प्रदान करती है। यह सुन्नता को नष्ट करती है। तथा ज्ञान तन्तु को शक्ति प्रदान करती है। फिलपांव में भी यह लाभकारी है। इसके सेवन से चेहरे का रंग लाल, साफ और चमकदार हो जाता है। विछावन पर होने वाली या अनजाने पेशाव हो जाने वाली विमारी को भी यह दूर करती है। यह चूकि गरम औषधि है इसलिए सर्दी के शुरू से लेकर वसन्त तक इसका सेवन किया जा सकता है।

मात्रा : इसके चूर्ण की मात्रा 3 से 6 ग्राम तक प्रतिदिन है। यदि किसी प्रकार की परेसानी इसके सेवन काल में महशुस हो तो अनार के रस का सेवन परेसानी को मिटा देगा। बहुत कमजोर तथा निर्वल को इसकी आधी ग्राम की मात्रा शुरू करनी चाहिए। अन्यथा खुश्की होकर परेसानी बढ़ सकती है।

इस पौधे की उपयोगिता देखकर इसकी खेती बहुत आवश्यक है। यह विदेशों से इस देश में आती है। यदि इसकी खेती की जाय तो यह काफी धन अर्जन का स्रोत बन सकता है।

116. बीज बन्द (RUMEX MARITIMUS)

यह जंगली पालक के बीज है। खेतों में जहाँ पर पानी का जमाव अधिक रहता है तथा नमी रहता है वहाँ पर यह होता है। इसके पत्ते हुवहु पालक के पत्तों के जैसा ही दूर से देखने पर लगते हैं। पर नजदीक से देखने पर बहुत अन्तर रहता है। इसमें मंजरी होता है। उस मंजरी में काफी कड़े वीज होते हैं। यह लगभग समस्त भारत में उपजता है।

गुण–प्रभाव : बीज वन्द एक अतिपौष्टिक पदार्थ के रूप में जाना जाता है। इसमें खनिज लौह सहित अन्य अनेको खनिज पाया जाता है। यह शीतल है और तिक्तरस की है। इसके पत्तों के रस को जलने के स्थान पर लगाया जाता है। इसका वीज काम वर्द्धक है तथा अनेकों काम वर्द्धक औषधियों में यह शामिल रहता है। इसके प्रयोग से कमर के दर्द तथा कटिवात दूर होता है। इसके पत्तों के रस से पुराना प्रमेह दूर होता है। यह पीठ के दर्द को भी दूर करता है।

मात्रा : इसके वीज की मात्रा 2 ग्राम तक, इसके पत्तों के रस की मात्रा 2 से 3 ग्राम तक। इसकें जड़ की मात्रा एक ग्राम तक दिया जाता है। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती लाभदायक है। इसके बीज की माँग बाजार में रहती है।

117. नागवला (फरीद बूटी) (SIDA HUMILIS)

यह नागवाला की प्रचलित प्रजाति है। इसका व्यवहार अधिकतर वैद्य करते हैं। यह प्रायः सब प्रान्तों में पायी जाती है। इसका क्षुप बहुवर्षायु, रोमश, लम्बी शाखाओं से युक्त, जमीन पर तथा झाड़ियों पर फैली हुई होती है। भूमि पर सर्प की तरह टेढ़े–मेढ़े फैले होने के कारण इसे नागवला कहते हैं। पत्ते आधी से 1 इंच लम्बे प्रायः लट्वाकार, हृदयाकार, दन्तुर, रोमश तथा लम्बाग्र होते हैं। पुष्प पीले रंग के छोटे–छोटे अनेक पुष्प आते हैं।

गुण–प्रभाव : इसका जड़ अत्यन्त पौष्टिक, रसायण, आयुवर्द्धक तथा वल वर्द्धक मानी गई है। राजयक्ष्मा (T.B.) की यह अद्भूत औषधि है। तथा रोगी में जान फूक देती है। रसायन के लिए इसको दूध के साथ उबाल कर या इसके जड़ के चूर्ण को मधु या मिश्री मिलाकर दूध के साथ लेते है। यह बल का संचार करता है। क्षय (T.B.) के रोगी इसके 5 ग्राम चूर्ण को प्रतिदिन दुध मधु से सेवन करे और प्रति सप्ताह 5 ग्राम बढ़ा दें। इस प्रकार दो से 3 माह करने पर क्षय का रोग नष्ट हो जाता है। इसके साथ दूध भात या दूध रोटी का पथ्य रखना चाहिए। इसको 30 ग्राम से अधिक नहीं खाना चाहिए। इसका 50 ग्राम तक का काढ़ा बनाकर दूध के साथ पीने से भी यही लाभ देता है। हृदय रोग, श्वास काश में भी दूध के साथ इसका सेवन कराया जाता है।

मात्रा : जड़ का चूर्ण 5 से 10 ग्राम । 50 से 100 ग्राम पंचांग का काढ़ा प्रतिदिन।

आर्थिक दृष्टि से इसकी खेती लाभदायी हो सकती है । इसका घन क्वाथ बनाकर बेचा जा सकता है ।

118. बनकण्डा (मुंज) (SACHARUM MUNJ)

यह एक ऊँची जाति की घास होती है। इस घास से लम्बे रेसे प्राप्त किये जाते हैं। उनके रशों से रस्सियाँ बनाई जाती है। इन रस्सियों से खाट या चारपाई बिना जाता है। इसमें एक लम्बा मुलायम कण्डा निकलता है। जिसकी पहचान लगभग सभी जानते हैं। पहले इसी कण्डे की कलम बनाई जाती थी। जिसे स्याही में डुबाकर लिखा जाता था इसके कन्डे से अनेकों प्रकार की दस्तकारी के सामान भी बनते हैं।

गुण–प्रभाव : यह मधुर, कसैली और शीतल होती है। इसका कामोत्तेजक प्रभाव स्पष्ट दिखता है। यह दाह, तृषा, रूधिर विकार, विशर्प, मुत्ररोग, नेत्र रोग और विशर्प को नष्ट करती है। यह कफ पित्त जन्य परेशानियों को मिटाता है तथा भूतबाधा को दूर करता है। इसका जड़ यदि प्रसूति (बच्चा देने के समय और थोड़े दिन बाद तक) के समीप जलाई जाय तो कई रोगों से रक्षा होता है। बहुत जगह इसकी पूजा होती है। इसका धूम्रपान और भाप भी लाभदायक है। इसका काढ़ा सेवन किया जाता है। इसका क्षार भी बनता है।

मात्रा : 50 ग्राम जड़ का काढ़ा निर्देशित सभी रोगों में लाभदायक है। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती बहुत पहले से ही लाभदायी है। इससे रस्सी बनता है। इसके कण्डा से विविध प्रकार के सामान बनते हैं। इसके पत्तों से घर छाया जाता है। खपड़े के मकान बनाने में इसका अधिक उपयोग है। इसकी खेती लाभदायक है।

119. काश (SACCHARUM SPONTANEUM)

यह तृण जातिय वनस्पति है। नदियों के किनारे यह अधिक पाया जाता है। इसके पौधे 5 से 7 फीट तक उँचा झाड़ीनुमा पतले पत्तियों से युक्त होते है। पत्ते बहुत कम चौड़ा तथा किनारे मुड़े हुए होते हैं। पुष्प दण्ड एक दो फिट उँचा होता है। जिसपर श्वेत रंग के पुष्प गुच्छों में आते हैं। शरद ऋतु में यह पुष्पित होता है तथा बहुत ही सुहावना होता है। यह आम लोगों से परिचित है।

गुण–प्रभाव : मधुर एवं तिक्त रस युक्त है। यह शीतल प्रभाव वाला होता है। यह हल्का दस्तावर होता है। पेशाब के रोग तथा गुर्दा के पथरी को यह नष्ट करता है। यह जलन को मिटाता है। रक्त के बहुत सारे रोगों को यह दूर करता है। यह क्षय का नाश करता है। शीतल होने के कारण यह पित्त के सभी दोषों को मिटाता है। इसका जड़ रक्त वर्द्धक दुग्ध वर्द्धक, एवं मुत्र वर्द्धक है। इसका प्रयोग खूनी ववासीर, रक्त प्रदर में बहुत लाभदायी होता है। यह वेद के द्वारा प्रसंशित औषधि हैं। इसके सेवन से सौभाग्य की भी वृद्धि होती है। इससे स्वभाव सौम्य होता है।

मात्रा : लगभग 25 से 50 ग्राम जड़ को कुट कर उसको 300 ग्राम पानी में उबालकर जब 150 ग्राम पानी बचे छान कर पिना चाहिए। इससे उपर निदेशित रोगों का शमन होता है तथा सभी लाभ प्राप्त होते हैं। इसके उजले राख का भी व्यवहार एक ग्राम की मात्रा में होता है। इसकी व्यवसायिक उपयोग होता है। अतः इसकी खेती धनोपार्जन के लिए उपयोगी है।

120. पीलू (SALVADORA OLEOIDES)

इसका वृक्ष 7 से 8 फीट तक उँचा होता है। इस वनस्पति की छाल खुरदरी होती है। पत्ते हृदयाकृति के नोंकदार और आमने–सामने लगे होते हैं। फूल छोटे और फल पकने पर पीले होते हैं। यह पौधा तैल वर्ग में आता है। इस पौधों के बीज से तेल निकाला जाता है। भारतीय तेल बोर्ड इसकी खेती को प्रोत्साहित कर रही है। यह झारखण्ड सहित समस्त भारत में होनेवाला पौधा है।

गुण–प्रभाव : इसका फल तिक्ष्ण, कटु, खट्टा और मिठा होता है। इसमें उत्तेजक गुण है। यह स्वादिष्ट है तथा मृदु विरेचक है। यह शान्तिदायक और विषनाशक है। यह गरम होने से पित्त के रोग तथा रक्त पित्त (हिमोफिलिया) को बढ़ा देता है। यह वातरक्त (गठिया) को मिटाता है। इसके पत्ते और निर्गुण्डी के पत्तों को लेकर गरम करके वायु के दर्द वाले स्थान पर बॉधने से वायु का दर्द मिटता है। इसके छाल में उत्तेजक गुण बहुत अधिक है। ज्वर में इसका प्रयोग किया जाता है। मासिक धर्म की शुद्धि के लिए भी इसका क्वाथ दिया जाता है। इसके सूखे फल काली अंगुर के जैसे दिखाई पड़ते हैं। इसमें चीनी का अंश बहुत रहता है। इसका फल जोड़ों के दर्द तथा तिल्ली के रोग को दूर करने के लिए दिया जाता है। इसके फल मृदु विरेचक और विषनाशक है। इसके बीज से निकाले गये तेल का प्रयोग पसीना लाने, उत्तेजना पैदा करने, चेतनावर्द्धन के लिए प्रयुक्त होते हैं। जोड़ों के दर्द में भी इसके मालिस से लाभ होता है। यह खुजली और कुष्ठ में मुफीद है। यह काम शक्ति को बढ़ाता है। इसके लकड़ी से दातून करने से दाँत और मसुढ़े मजबूत होते हैं। बच्चा जन्म देने के बाद औरतों को होने वाले दर्द में इसके मालिस से लाभ होता है। गंज को भी दूर करता है।

मात्रा : इसके छाल 5 ग्राम का काढ़ा दिया जाता है। फल 10 से 20 ग्राम प्रतिदिन खिलाया जाता है। तैल का अन्तः प्रयोग नहीं करना चाहिए। **व्यवसायिक दृष्टि से** इसकी खेती लाभदायक है। इसका फल सुखा फल में बिकता है। इसके बीज का तैल मंहगा बिकता है।

121. राम दतवन (SMILAX PROLIFERA)

यह एक पराश्रयी लता है। इसमें काँटे होते हैं। इसके पत्ते पान के पत्तों जैसे परन्तु उनसे बहुत बड़े होते हैं। इसके जड़ से दो पौधे एक लाल एवं सफेद हरापन पर लिये निकलता है। जिसमें एक को स्त्री जाति का तथा दूसरे को पुरूष जाति का माना जाता है। झारखण्ड के जंगलों में यह पाया जाता हैं। इसका दतवन बहुत कड़ा होता है। इसलिए

इसका नाम ऐसा अनुमान किया जाता है कि राम दतुअन पड़ा। इसका व्यवहार पूजा में भी लोग करते हैं। तथा इसको आदर की दृष्टि से लोग देखते हैं।

गुण—प्रभाव : राम दतवन तिक्त तथा काषाय रस की औषधि है। इसके पत्तों पर भोजन करने से इसके प्रभाव से पेशाब की बिमारी दूर हो जाती है। जो बच्चे बिछावन पर पेशाब करते हैं उन्हें इसके पत्तों पर गरम—गरम खाना परस कर खिलाया जाता है। कुछ दिन ऐसा करने से बिछावन पर पेशाब करना बच्चे बन्द कर देते हैं और उनकी तेजस्विता बढ़ जाती है। इसके जड़ को पीस कर उसको पुराना गुड़ या गाय के गाढ़ा किया हुआ दूध में मिलाकर पानी के साथ खिलाते हैं। इससे पुराना पेचिश, पेशाब की विमारी, पेशाब में खुन जाना, खुनी पेचिश का रोग दूर होता है। इस तरह यह दिव्य औषधि की श्रेणी में आता है। जिसपर अभी कार्य करना बाकी है। इसकी खेती की जाय तो यह धन अर्जन के लिए लाभकारी हो सकता है।

मात्रा :— इसके पत्तों का चूर्ण 2 से 3 ग्राम/जड़ या डंठल का काढ़ा 5 से 10 ग्राम देना चहिए ।

122. तिखुर (CURCUMA ANGUSTIFOLIA)

यह तनारहित कनीय जड़ वाली वनस्पति हैं । इसकी जड़ों में लम्बे मांसल अवृत्तिय रेशानुमा संरचनायें निकलती हैं। जिनके सिरों पर हल्के रंग के अन्डाकार कंद पाये जाते हैं। इसकी पत्तियाँ 30 से 45 सें0मी0 लम्बी भालाकार तथा नुकीले शीर्षवाली होती है। इसके पीले रंग के पुष्प गुलाबी सहपत्रों से घिरे रहते हैं। इसका फल अंडाकार होता है। जो तीन कपाटों में खुलता है। तथा जिनके अन्दर छोटे—छोटे बीज पाये जाते हैं।

गुण—प्रभाव : इसके कंदिय जड़ों में स्टार्च पायी जाती है। जिसे कई विमारियों में प्रयोग किया जाता है। यह मधुर तथा तिक्त होता है। किंचित काषाय रस वाला होता है। इसका प्रयोग अरारूट के जगह पर भी किया जाता है। आम लोग अरारूट को भी तिखुर मानते हैं। यह पौष्टिक ज्वरहर तथा रक्त शोधक होता है। इसको कोढ़ जलन, अपच, दम्मा, पिलिया, रक्ताल्पता, श्वेत कुष्ठ, पथरी, अल्सर, रक्त संबंधी बिमारियों में उपयोग किया जाता है। यह कमजोर बच्चों और अधिक उम्र के बच्चों के लिए अति उपयोगी है। इसका आंटा फलाहारी वस्तु के रूप में व्यहार होता है। इसकी भोजन की सामग्री मिठाई भी बनती है। अनेकों कम्पनियॉ शक्तिवर्द्धक औषधि के रूप में इसको मिलाकर बेचती है।

इसकी मात्रा — 25 से 60 ग्राम प्रतिदिन। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती बहुत ही लाभदायक है। इसका सम्पूर्ण भारत सहित विश्व भर में माँग है।

123. विलाई कन्द (विदारी) (IPOMOEA DIGITATA)

यह लता जाति की वनस्पति झाड़दार और विस्तार में फैलने वाली होती है। इसकी डालिया पीली होती है। पत्ते 6 से 7 इंच के घेरे में हाथ के पंजे के समान 5 से 7 भागों में विभक्त रहते हैं। फुल नलिका कार चौथाई इंच गोल, उपर का भाग डेढ़ इंच से ढ़ाई इंच के घेरे में होता है और यह वैगनी रंग का दिखाई पड़ता हैं फल चार छिलके वाले गोलाकार छोटे—छोटे होते हैं और वे झुमको में आते हैं। इनके अन्दर वीज होता है। वीज को रोपने से पौधे वनते हैं। कन्द बाहर से भूरे रंग का तथा खुरदरा होता है। काटने से अन्दर से यह खुरदरा दिखाई पड़ता है और उसमें से दूध निकलता है। इसकी सुखायी हुई कचरी बहुत हल्की होती है तथा उसमें मंडल दिखाई पड़ता है।

गुण— प्रभाव : यह पिष्ट मय, कसैला और कडुआ स्वाद का होता है। यह अनुलोमक, पित्त सारक, स्तन्य जनक, स्नेहक तथा उत्तम पौष्टिक है। इससे भूख लगती है। अन्न पचता है। शौच साफ होता है। शरीर का वर्ण सुधरता है। वजन बढ़ता है। कंठ विकार में इसका प्रयोग करते हैं। बच्चों के काश में इससे लाभ होता है। इसके पंचांग का शर्वत बनाकर 6 ग्राम से 12 ग्राम तक प्रयोग करते हैं। वर्रे जिसे युवा पिड़िका कहते हैं । उसमें भी यह लाभदायी है।

मात्रा : इसकी चूर्ण की मात्रा 1 ग्राम तक है। इसकी खेती आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है। इस पौधा में बहुत सारे तत्व पाये जाते हैं। जिनके निष्कासन के लिए इसकी माँग विश्व में भी है।

124. जूही (JASMINUM AURICULATUM)

जूही की लता, वन, उपवन और पुष्प वाटिकाओं में होती है। इसके फुल सफेद रंग के छोटे–छोटे अत्यंत सुन्दर अत्यंत सुगंधित होते हैं। सफेद और पीली फुल के भेद से इसकी दो जातियाँ होती है।

गुण–प्रभाव : दोनों प्रकार की जूही शीतल, कड़वी, पचने में हलकी, मधुर कसैली, हृदय को हितकारी, पित्तनाशक कफ एवं वात कारक है। चर्म रोग, मुख रोग दन्त रोग, नेत्र रोग और विष को नष्ट करने वाली है। इसके गुण धर्म चमेली से मिलती जुलती है। मुँह के छालों में जूही के पत्तों को चबाने से फायदा होता है। कान के दर्द या कान के पकने पर इसके पत्तों के रस से पकाया गया तील का तेल बहुत ही गुणकारी होता है। पैड़ो के विवाई पर इसे पीस कर छापने से तथा बाँध कर 2–3 घंटा छोड़ देने से यह तुरंत लाभकारी सिद्ध होती है। इसकी पीला फुल को पीस कर योनी पर लगाने से योनी की ढिलापन दूर हो जाती है तथा मन मस्तिष्क के रोग दूर होते हैं। एक दो फुल उजला या पीला खिलाना भी चाहिए। इसका रतौंधी और आखों की विमारी पर बहुत लाभदायक योग :– जूही के फुल 50 नग, भाँगरे के पत्ते 50 नग सहजन के पत्ते 30 नग, काली मीर्च 16 नग, छोटी पीपल 3 नग, सबको बारीक पीस कर इसकी वत्ती बना लें और उसे सुखा लें। जरूरत पड़ने पर इस बत्ती को काँजी या पानी के साथ घिसकर आँखों में लगा दें। इससे आँख की सभी विकार निकल जाता है और आँख साफ हो जाती है। इसे आँख की लाली की अवस्था में प्रयुक्त नहीं करना चाहिए। इसकी मात्रा–पत्ते 3 से 5। फुल 10 से 15 प्रतिदिन।

125. विधारा (SANTALOIDES MINUS)

यह लता जाति की वनौषधि झाड़दार बहुत बड़ी और अनेक शाखा प्रशाखाओं करके युक्त होती है। इसका विस्तार बहुत बड़ा होता है। और यह किसी वृक्षादि के सहारे बढ़ती और फैलती है। इसकी टहनियों पर छोटी छोटी काँटें होती हैं। छाल पतली, भूरापन लिए सफेद रंग की होती है। पत्ते विषम वर्ती डेढ़ इंच तक लम्बी, अंडाकार, अनिदार और कुछ नुकीले होते हैं। इसकी डालियों पर वारहों मास फुल आता है तथा फुलों का गुच्छा लगता है। फल आध इंच से पौन इंच तक लम्बा उसमें एक से 2 वीज रहता है।

गुण–प्रभाव :– यह कटु, कसैला, रसायन, गरम, मधुर, मेघाजनक, पिच्छिल, शारक, अग्नि प्रदीपक, कान्ति जनक, धातु वर्द्धक, वलकारक, रूचिकर , पुष्टिकारी, पचने में हल्का होता है। यह आम दोष को पचाता है। पाण्डु रोग, क्षय, खाँशी प्रमेह, वातरक्त, आमवात, वात, कफ और सुजन का नाश करने वाला होता है। यह शरीर की विनिमय क्रिया को सुधारता है। मुत्राशय के दाह और सर्दी में इसके 5 ग्राम का काढ़ा पिलाने से बहुत लाभ होता है । स्मरण शक्ति एवं बुद्धि वर्द्धन के लिए इसको 5 ग्राम की मात्रा में दूध से दिया जाता है। उपदंश में 5 ग्राम विधारा और 5 ग्राम त्रिफला का काढ़ा कुछ दिनों तक लगातार प्रयोग करने से बहुत लाभ होता है। इसके चूर्ण को काँजी के साथ सेवन करने से श्लीपद रोग आराम होता है। विधारा के द्वारा पकाये गये घृत पुत्र के लाभार्थी के लिए उपयोगी है। विधारा और चिरायता का काढ़ा पीने से रक्त दोष दूर होता है। विधारा के साथ शोठ, पीपल, मरीच, बराबर भाग में मिलाकर प्रयोग करने से गठिया मिटती है। दर्द दूर होता है।

मात्रा :– 2 से 3 ग्राम प्रतिदिन 2 बार दूध के साथ। इसकी खेती बहुत ही लाभदायक है। इसकी माँग समस्त भारतवर्ष में है।

126. कठूमर (FICUS HISPIDA)

यह अतिसार के लिए अति उपयोगी है। यह मल को बांधता है। गर्मी को दूर करता है। खांसी, सर्दी एवं गला की खुश्की की अच्छी औषध है। यह पाण्डु (जौन्डीस) को मिटाता है। चर्म की सफेद दाग (ल्यूकोडर्मा) के लिए बहुत उपयोगी औषध है। शरीर के अन्दर यकृत की क्रिया को सुधार कर रक्त का निर्माण करता है तथा पित्त के स्त्राव को

सुधार कर पाण्डु कमला रोग को मिटाता है। यह खुनी या वादी दोनों तरह के बवासीर की दवा है। इसकी छाल का काढ़ा या पत्तीं का काढ़ाइन दोनों रोगों मे व्यवहार किया जाता हैं। इसका फल पौष्टिक तथा उदर विकार को मिटाने के लिए उपयोगी है।

सेवन विधि और मात्रा :— इसकी छाल या पत्ता 25 से 50 ग्राम लेकर या कुटकर 200 ग्राम पानी में उबालें। आधी बचे तो पिला दें। इसके फल की सब्जी खाई जाती है। मात्रा फल की सूखी चूर्ण 2 से 5 ग्राम। छाल का चूर्ण 1 से 3 ग्राम तक लिया जाता है।

127. शमी (PROSOPIS SPICIGERA)

यह नवग्रह की शान्ति हेतु व्यवहृत अति प्रसिद्ध छोटे आकार का वृक्ष है। लोग इसे बागवानी में तथा अपने घर के आस–पास लगाते है। यह कब्ज नाशक, कफ, वात रोगनाशक, श्वास रोगों पर काफी लाभदायक है। भ्रम रोगों की सभी औषधियों में यह श्रेष्ठ है। बवासीर एवं गुदकृमी को भी नष्ट करता है। इसके व्यवहार से भाग्योदय की वृद्धि होती है। सभी रोगों से रक्षा होती है। मात्रा 2 ग्राम तक छाल, फूल, फल के चूर्ण का व्यवहार किया जाता है।

128. धाय (धवई) (WOODFORDIA FLORIBUNDA)

यह 10 से 12 फीट तक ऊँचा होता है। यह जंगल में होता है तथा स्थानीय लोग इसे पहचानते है। इसे धवई के फूल के नाम से जाना जाता है। इसके फूल का व्यवहार किया जाता है। यह समस्त भारत में उपलब्ध है। यह अति उपयोगी औषधि द्रव्य है।

गुण :— सर्प विष में इसके पत्तों का रस लगाया जाता है। यह शरीर के किसी भी अंग से होने वाले रक्त स्त्राव को रोकता है। यह घाव की अच्छी दवा है। अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी, रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर में उपयोगी है। बवासीर, यकृत विकार में यह उपयोगी है। आसव, अरीष्ट को बनाने में यह सहयोगी भूमिका अदा करता है। सभी इसे मिलाकर बनाते हैं। गर्मी के दिन में ठंढ़ा शर्बत के रूप में इसे पीसकर चीनी के साथ व्यवहार किया जाता है।

मात्रा :— फूल का चूर्ण 1 से 2 ग्राम। छाल का चूर्ण 2 से 3 ग्राम। पत्ता का चूर्ण 1 से 2 ग्राम तक लेना चाहिए।

129. कनेर श्वेत (NARIUM ODORUM)

यह लाल एवं सफेद तथा पीला तीन तरह का है। यह विषज औषधि है। इसका अन्तः प्रयोग बहुत सावधानि के साथ किया जाता है। यह अत्यंत गर्म औषधि है। यह नेत्र रोग, कुष्ठ, घाव, कृमि, खुजली की दवा है। वाह्य प्रयोग के लिए इसका व्यवहार अधिक किया जाता है। बहुत कम मात्रा में अति सावधानी के साथ इसका प्रयोग करने पर हृदय के लिए वल्य भी है। यह मुत्र की मात्रा को बढ़ाता है। जिससे अन्दर की सुजन मिटती है। इसको तेल पकाने के काम में लिया जाता है। कान के अन्दर से पीव के स्त्राव को, इसके छाल, फल या पत्ती से पकाया हुआ तेल ठीक कर देता है। यह सोराइसीस जैसी विकृत चर्म रोग में भी प्रयुक्त होता है। खुजली, इक्जीमा, पुराने घाव की दवा है। इसके पत्ते का अन्तर्धुम विधि से बनाया हुआ भष्म 1/8 रत्ती व्यवहार करने से दम्मा, श्वास पर काफी लाभ करता है। इसका प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए। इसका वाह्य प्रयोग तेल पकाकर करना चाहिए।

130. पीला कनेर (THEVETIA PERUVIANA)

इसका प्रयोग भी श्वेत कनेर के जैसा ही होता है। इसका भी वाह्य प्रयोग के लिए ही व्यवहार किया जाता है। खिलाने के लिए काफी सावधानी बरती जाती है। अतः इसे नही खिलाना चाहिए।